HANS SHODH SUDHA , Vol. 1, Issue. 1, (2020) pp. 145-152

ब्रज लोक नाट्य रासलीला : पुराण से परिवर्तन तक

डॉ. नृत्य गोपाल

भारत के लोक की अपनी महत्ता है। लोक जीवन, लोक संस्कृति, लोक साहित्य, लोक वार्ता, लोक हित, लोक गीत, लोक नाट्य आदि के रूप में भारतीय लोक फैला पसरा हुआ है। इस लोक के अपने अलिखित सिद्धांत और अनाम सिद्धांतकार हैं। लोक स्थिर भी है और तीव्र परिवर्तनगामी भी। लोक की विराटता को व्याख्यायित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली समस्त जनता है, जो विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने वाली आवश्यक वस्तुएं उत्पन्न करते हैं।''[1] लोक की भाव सत्ता का स्वरूप व्यापक है। इसे ग्राम्य, नगरीय या इसी प्रकार की किसी शब्दार्थी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता।

लोक ने अपनी आवश्यकताओं के साधन स्वयं जुटाए हैं। यह भारतीय लोक की ताकत है। भारतीय समाज और अर्थ व्यवस्था का निवास लोक में निहित है। इसने अनेक बार भारत को वैश्विक आर्थिक संकटों से उबारा है। स्वयं का अनाज, दूध, दही, घी, सब्जी, मसाले, बर्तन, कपडा आदि उत्पादित करना तथा उसी पर निर्भर रहना हमें आत्मनिर्भर बनाता है। एक किसान के यहां उसके परिवार और पशु धन के लिए वर्ष भर का आवश्यक सामान उपलब्ध रहता है। इस लोक ने सामाजिक मनोरंजन के भी अपने साधन विकसित किए हैं। ये लोक साहित्य और लोक नाट्य के रूप में देखे समझे जा सकते हैं। यहां हम भारतीय लोक नाट्य परंपरा के अंतर्गत ब्रज लोक नाट्य विधा रासलीला पर चर्चा करेंगे। समय के साथ लोक नाट्य विधाओं ने स्वयं को लोक की मांग के अनुरूप परिवर्तित किया है। रासलीला का स्वरूप भी पुराण काल से आज तक इस परिवर्तन का साक्षी रहा है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का बडा भू भाग 'ब्रज क्षेत्र' या 'ब्रज प्रदेश' कहलाता है। मथुरा आगरा इसका केंद्र है। एटा, मैनपुरी, अलीगढ, हाथरस आदि जिले ब्रज क्षेत्र में समाहित हैं। भाषाई रूप में ब्रजभाषा क्षेत्र और व्यापक हो जाता है। जहां इसमें राजस्थान के भरतपुर , धौलपुर, कोटा जिले आ जाते हैं वहीं हरियाणा के फरीदाबाद तथा मेवात क्षेत्र का एक भाग भी इसकी सीमा में आ जाता है। उधर मध्य प्रदेश के भिंड, मुरैना और ग्वालियर तक ब्रज भाषा का क्षेत्र फैला हुआ है। क्षेत्रीय और भाषाई विस्तार के बावजूद ब्रज की पहचान मथुरा जिले पर केंद्रित हो गई है। इसके दो प्रमुख कारण हैं एक– यहां भारतीय संस्कृति में पूजनीय स्थान रखने वाले श्री कृष्ण का जन्म और दूसरे भारतीय लोक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली गाय। वस्तुतः ब्रज का अर्थ ही है गौपालन का क्षेत्र या गौ खिरक। संयोग से कृष्ण की एक पहचान गाय पालक से होती है इसलिए भारतीय जनमानस में ब्रज क्षेत्र की लोकप्रियता का आधार पुष्टता को प्राप्त हो गया।

ब्रज क्षेत्र में लोक मनोरंजन की कई नाट्य शैली प्रचलित हैं। जैसे– रासलीला, रामलीला, नौटंकी, स्वांग, भगत, रसिया आदि। इनमें रासलीला सबसे प्राचीन और लोकप्रिय विधा है। रासलीला का संबंध कृष्ण चरित्र से है। कृष्ण भारतीय जनमानस की आस्था के केंद्र में स्थापित हैं। रासलीला को लोकनाट्य की सीमा में लाना भक्ति तथा आध्यात्मिक क्षेत्र से जुडे लोगों के लिए आपत्तिजनक भी हो सकता है। फिर भी, वर्तमान से मुंह नहीं मोडा जा सकता जहां रासलीला लोकनाट्य के रूप में स्थापित है।

रासलीला का अर्थ विकास– 'रासलीला' शब्द 'रास' और 'लीला' दो शब्दों के योग से बना है। "रास शब्द का मूल अर्थ रस है। रसरूप स्वयं श्रीकृष्ण ही 'रसो वै सः' या 'रसानां समूहो रासः' हैं। जिस क्रीडा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में प्रकट होकर अनन्त–अनन्त रसों का समास्वादन करे, एक रस ही रस समूह में प्रकट हो कर स्वयं आस्वाद्य एवं आस्वादक लीलाधाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में क्रीड़ा करे, उसका नाम रास है।"[2] लीला शब्द का अर्थ है–"ऐसा कार्य या व्यापार जो सिर्फ मनुष्यों के मनोरंजन के लिए किया जाए,

हिंदी विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली 110 007, मो0 9818633238

खेल, क्रीडा। भक्तों की दृष्टि में इस धरती पर मानव के रूप में अवतार लेने वाले भगवान के क्रियाकलाप। अवतारों के चरित्र का अभिनय जैसे- कृष्ण लीला, राम लीला।"[3] हिंदी साहित्य कोश भाग एक में रासलीला को परिभाषित करते हुए लिखा गया है-''सोलहवीं शती में श्री वल्लभाचार्य तथा हित हरिवंश आदि महात्माओं ने लोक प्रचलित जिस शृंगार प्रधान रास में धर्म के साथ नृत्य, संगीत की पुन:स्थापना की और उसका नेतृत्व रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण को दिया था, वही राधा तथा गोपियों के साथ कृष्ण की शृंगारपूर्ण क्रीडाओं से युक्त होकर रासलीला के नाम से अभिहित हुआ।

रासलीला लोकनाट्य का एक प्रमुख अंग है। भक्तिकाल में इसमें राधा कृष्ण की प्रेम क्रीडाओं का प्रदर्शन होता था, जिनमें आध्यात्मिकता की प्रधानता रहती थी। इनका मूलाधार सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों के पद और भजन होते थे। उनमें संगीत और काव्य का रस तथा आनंद, दोनों रहता था। लीलाओं में जनता धर्मोपदेश तथा मनोरंजन साथ साथ पाती थी।''[4]

रासलीला का पौराणिक रूप- रासलीला का आधार श्रीमद् भागवद्महापुराण है। श्रीमद् भागवद्महापुराण में कृष्ण चरित्र का व्यापक स्वरूप वर्णित है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में 29 से लेकर 31 अध्याय तक रास पंचाध्यायी के रूप में विख्यात हैं। "तथापि एक सौ इक्कीस अध्यायों में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन होने से भागवत को श्रीकृष्ण परक ही कहा जाता है। श्रीमद्भागवत को श्री कृष्ण का स्वरूप मानकर स्कंधों को श्री कृष्ण के स्वरूप में विभक्त किया है। वहां दशम स्कंध को भगवान् का हृदय-स्थल माना है और रासलीला के पांच अध्यायों को पंच प्राण माना है।"[5] श्रीमद्भागवत के रासपंचाध्यायी के पांच अध्यायों का वर्ण्य विषय कुछ इस प्रकार है-"रास पंचाध्यायी के पांच अध्यायों में प्रथम श्री कृष्ण अपनी वंशी वादन से गोपियों का आवाहन करते हैं और उन्हें नारी धर्म के अनुसार घर में रहकर सब की सेवा करने का आदेश देते हैं। गोपियाँ निराश होकर प्रार्थना करती हैं। श्री कृष्ण प्रसन्न होते हैं और प्रथम रास होता है। गोपियों में अभिमान आ जाने पर प्रभु अंतर्ध्यान हो जाते हैं। द्वितीय अध्याय में गोपियाँ खोजती हैं। तीसरे अध्याय में मिलने की प्रार्थना करती हैं। चौथे अध्याय में भगवान् प्रकट होते हैं। पांचवें अध्याय में रासक्रीडा का वर्णन है।"[6] इस प्रकार रास का आधार श्रीमद्भागवत महापुराण है। परिवर्ती रास स्वरूप और काव्यगत रास स्वरूप से श्रीमद्भागवत का रास वर्णन भिन्न है। इस ओर संकेत करते हुए मानस शास्त्री लिखते हैं कि—"काव्य ग्रंथों में नृत्य, वाद्य और गायन का समवेत् स्वरूप ही रास है और इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गुजरात, मध्य प्रदेश, आसाम, उडीसा आदि में आज भी दिखाई देता है परन्तु यह जो रासलीला है, उसका उपक्रम और उपसंहार दोनों ही भगवान से ही सम्बन्धित हैं। रास लीला के प्रथम श्लोक में 'भगवानपि ता: रात्री:' और अंत में 'विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णो:' वर्णन किया है।''[7] पौराणिक दृष्टि से रास श्री कृष्ण की लीला है और श्री कृष्ण स्वयं परमात्मा स्वरूप हैं। रास लीला का वर्णन भलेहि श्रीमद्भागवद् में हुआ हो पर कृष्ण का उल्लेख वेद वाड्मय से ही माना जाता है। कृष्ण के नानाविध रूपों का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है। "भारतीय वाड्मय में वेद और उपनिषदों के बाद महाभारत का स्थान है। इसका रचना काल दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री ने अपने ग्रंथ 'वैष्णवधर्मनो संक्षिप्त इतिहास' में 350 ई.पूर्व माना है। महाभारत में कृष्ण के वासुदेव कृष्ण अथवा राजनीतिज्ञ कृष्ण का तथा बाल कृष्ण का रूप उभरकर आया है। प्रथम के अनुसार कृष्ण एक महान योद्धा और राजनीतिज्ञ कूटनीतिज्ञ हैं जिन्होंने पाण्डवों की युद्ध में सहायता कर उन्हें विजयश्री दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विद्वानों के मत में महाभारत में कृष्ण का जो रूप वर्णित है यही उनका वास्तविक रूप है। बालकृष्ण का रूप जिन खण्डों में रूपायित किया गया है वे अंश प्रक्षिप्त अंश माने गए हैं।"[8] महाभारत के अंश हरिवंश महापुराण में कृष्ण के वृंदावन निवास का उल्लेख मिलता है। रास लीला का संबंध वृंदावन की लीलाओं से है।

रासलीला का दार्शनिक संबंध- रासलीला का संबंध कृष्ण से है। अवतारवाद की दार्शनिक अवधारणा में कृष्ण विष्णु का अवतार हैं। परमात्मा इस धरातल पर सगुण निर्गुण रूप में उपस्थित हैं। कृष्ण सगुण अवतार हैं। अष्टछाप के तर्कशील कवि नंददास की गोपियां उद्धव से प्रश्न करती हैं-

जो उनके गुण नांहिं और गुण भए कहां ते,
बीज बिना तरु जमैं मोहि तुम कहौ कहां ते,
वा गुण की परछांहरी माया दर्पण बीच
गुण ते गुण न्यारे भए अमल वारि ज्यों कीच
सखा सुन स्याम के।[9]

रासलीला के दार्शनिक चिंतन से प्रत्यक्षत: निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदाय जुडे हुए हैं। "निम्बार्क के द्वैताद्वैत मत में सर्वप्रथम राधा कृष्ण को उपास्य रूप में प्रतिष्ठित किया गया। श्रीकृष्ण के भावात्मक स्वरूप की अन्यतम प्रेरक शक्ति श्री राधा का कृष्ण के साथ प्रथम संप्रदाय प्रवेश (दार्शनिक समावेश) इसी मत में हुआ। अत: यहां कृष्ण अकेले नहीं हैं। वह युगलरूप हैं। वृषभानु नंदिनी राधा अपनी सहस्रों सखियों के साथ इनके वामांग में विराजमान हैं।"[10] निम्बार्क सम्प्रदाय के संतों ने कृष्ण

चरित्र में निकुंज विहार का प्रवेश कराया। इसी सम्प्रदाय के दो भक्त कवि श्री भट्ट तथा श्री हरिदेव व्यास ने युगल उपासना में सखी भाव का समावेश कर दिया। ''श्री राधा कृष्ण की निकुंज लीला में राधा जी की सखी सहचरियों का ही प्रवेशाधिकार है। अत: नित्य विहार की रसोपासना सखी भाव से ही की जा सकती है।''[11]

रासलीला को लोक के निकट लाने तथा जन जन में रसिक भाव जागृत करने का श्रेय वल्लभ सम्प्रदाय को जाता है। आचार्य वल्लभ का जीवन काल सं. 1535 से 1587 तक है। ''वल्लभ सम्प्रदाय में श्री कृष्ण परमब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम अपनी आनन्दविधायिनी लीला का प्रसार करने के निमित्त ही, श्रुतियों के प्रार्थनानुसार, कृष्ण रूप में अवतरित हुए। श्रुतियां ही गोपी तथा अन्य लीला परिकर रूप में ब्रज में आविर्भूत हुईं। इस प्रकार लीला विस्तार के हेतु ही पुरुषोत्तम का नित्य गोलोक कृष्ण का ब्रज मण्डल बन कर भूतल पर अवतरित हुआ।''[12] आचार्य वल्लभ ने ही पुष्टिमार्ग की स्थापना की। वल्लभ के पुत्र आचार्य बिट्ठल ने आगे चलकर अष्टछाप की स्थापना कर कृष्ण के लोकरंजक रूप को लोकप्रिय बनाया।

रासलीला के मंचन में इन दोनों दार्शनिक चिंतनों का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पडता है। उपासना, तिलक, मुकुट छवि के आधार पर इनके सूक्ष्म भेद को देखा जा सकता है। जैसे वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी रासाचार्य कृष्ण के शृंगार में तिलक नासिका के ऊपर रखते हैं तथा यह रोली या लाल चंदन से बनाया जाता है। जबकि निम्बार्क अनुयायी नासिका के मध्य भाग तक तिलक लगाते हैं बीच में श्री स्वरूप स्यामवर्णी बिंदी लगाते हैं। राधा कृष्ण की आराधना में गाए जाने वाले पदों में भी यह भेद दिखाई पडता है। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी रासाचार्य युगल उपासना में राधा कृष्ण को एक प्राण दो देही कहते हैं और निम्बार्क के उपासक राधा को कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में पूजते हैं। वृंदावन के संत आश्रमों की रासलीलाओं में इस पार्थक्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यद्यपि लीला मंचन दोनों का एक सा होता है। भाव, संवाद, अभिनय आदि में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं होता।

रासलीला की लोक प्रतिष्ठा—ब्रज क्षेत्र में कृष्ण चरित्र, विशेषत: उनके लीला बिहारी स्वरूप, को लोकप्रिय बनाने में भक्तिकाल की विशेष भूमिका है। यहां प्रचुर मात्रा में कृष्ण काव्य की रचना हुई है। अनेक कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय विकसित हुए। उन्होंने ब्रजराज कृष्ण, निकुंज बिहारी कृष्ण, लोकरंजक कृष्ण आदि रूपों का विशद् वर्णन किया। प्रस्थानत्रयी में श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या ने भी कृष्ण चरित्र को जन जन तक पहुंचाने का बडा कार्य किया। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य, श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नारायण भट्ट, श्री घमंडदेव, स्वामी श्री हरिदास, श्री हित हरिवंश, श्री हरिराम व्यास आदि संतजन अथवा रसिकजनों ने रासलीला को तद्युगीन समाज में आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना का आधार बना दिया। इनमें से श्री नारायण भट्ट गोस्वामी को तो The father of vraj yatras And Rasalila Performences कहा जाता है। आपकी कृति 'ब्रज भक्ति विलास' कालांतर में कृष्ण लीलाओं का आधार ग्रंथ बन गई थी। नारायण भट्ट जी के बारे में कहा जाता है –भट्ट नारायण अति सरस, ब्रज मंडल सौं हेत।

ठौर ठौर रचना करी, निकट जान संकेत।।

कृष्ण चरित्र के लीला स्थलों को लोकप्रिय और जन चेतना से जोडने का श्रेय श्री नारायण भट्ट गोस्वामी जी को जाता है। आपने ब्रज क्षेत्र के 333 स्थलों को कृष्ण चरित्र से जोडकर उनकी लीलाओं का वर्णन किया है। कालांतर में ये स्थल ही कृष्ण चरित्र के लीला स्थल के रूप में विकसित और लोक की आस्था के केंद्र हुए। ब्रज यात्राएं इन स्थलों से निकलने लगीं।इन ब्रज यात्राओं में रासलीला मंडली संग चलती थीं। स्थान विशेष के आधार पर रासलीला होती थी।

श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित रास कब लोक नाट्य का रूप धारण कर गया यह कहना कठिन है। रासलीला के मंचीय स्वरूप ने भारत के बडे भू भाग को लंबे समय तक आनंदित किया है। रासलीला ने लोक नाट्य विधा के रूप में भारत और भारत से बाहर भी ख्याति प्राप्त की है। 'रासलीला मंचन का इतिहास' बिंदु से डॉ.रामनारायण गोयल लिखते हैं–''रासलीला का मंचन कब से आरंभ हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। किंतु, श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कंध में वर्णित रासलीला के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रासलीला अथवा रास क्रीडा का प्रादुर्भाव कृष्ण कालीन ही है। इस प्रकार लगभग 2500 वर्ष से ब्रज का यह लोकनृत्य रूप सबसे पुराना माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी पातंजलि महाभाष्य में (जो ईसा के 2 शताब्दी पूर्व का माना जाता है) रास का वर्णन मिलता है। उसके बाद के संदर्भों में नारायण भट्ट जी का 'वाणी समाहार नाटक', मौलाना दाउद की कृति चन्दायन (10वीं शती) तथा नानक जी की वाणी (16वीं शती) का आधार रासलीला को एक प्राचीन नृत्य क्रीडा सिद्ध करता है। आज भी धार्मिक भावना से प्रेरित यह लोक नृत्य नाटक के रूप में अपना सानी नहीं रखता है।"[13]

'रासलीला' मंचीय स्वरूप का विकास—मंचीय रासलीला का वर्ण्य विषय अष्टछाप के कवियों तथा अन्य कृष्ण

भक्त कवियों के पदों पर आधारित था। इन कवियों ने ब्रज बिहारी , ब्रजराज , रसराज, निकुंजराज आदि रूपों में कृष्ण का वर्णन किया है। कृष्ण की बाल लीलाओं में परमतत्व की स्थापना कर कृष्ण को भगवान स्वरूप में वर्णित किया है। देवकी नंदन, यशोदा नंदन, नंदनंदन, गोपी वल्लभ रूपों में कृष्ण के चरित्र को दिखाया है। भक्तिकालीन कृष्ण भक्तों के काव्य में कृष्ण का जो रूप वर्णित हुआ वही कृष्ण लीलाओं का आधार बना।

मध्यकालीन संतों में भक्त घमंडदेव हुए जिनका समय 16 वीं 17 वीं शती है। उन्हें इस बात का श्रेय दिया जाता है कि वे वृंदावन में निवास करते हुए राधाकृष्ण की झांकी बनाने लगे और यत्र तत्र निकुंजों में बैठकर रास बिहारी की लीलाओं का गान करते थे। 5-5, 7-7 वर्ष के छोटे छोटे बालकों को राधा कृष्ण के रूप में तैयार करते। चंदन और पुष्प आदि से उनका शृंगार कर राधा कृष्ण का रूप धारण कराते । संतजन मिलकर उस झांकी के सम्मुख राधा कृष्ण के निकुंज विहार की माधुरी का गान करते थे। यह रूप माधुरी वृंदावन में इतनी प्रचलित हो गयी कि जगह जगह संत और भक्त इस प्रकार के आयोजन करने लगे। इसे नित्य रास अथवा निकुंज रास कहा जाता था। इसका मूल भाव यही है कि प्रिया प्रियतम राधा कृष्ण नित्य निकुंज बिहारी हैं। वृंदावन उनकी क्रीडा स्थली है। चिर नवीन युगल जोडी की आराधना में संत और भक्त रास रस पान करते थे। वृंदावन का यह निकुंज बिहारी स्वरूप रास रस केलि के रूप में एक लंबे समय तक स्थापित रहा। आज भी वृंदावन में कई स्थानों पर यह निकुंज उपासना विधिवत बनी हुई है। वृंदावन बंशीवट स्थित सुदामा कुटी में आज भी सायं काल प्रतिदिन रासलीला का आयोजन होता है। यहां नित्य निकुंज बिहारी की बाल लीलाओं का मंचन किया जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि सुदामा कुटी रामानंदी संप्रदाय का प्रतिनिधि आश्रम है। रामनंदी आश्रम में रास बिहारी की उपासना इस बात का प्रमाण है कि वृंदावन में संतों के बीच रूप भेद का कोई बडा महत्व नहीं है।

रासलीला का व्यावसायिक अथवा आधुनिक रूप- जैसा विदित है कि रासलीला का मंचीय रूप भौतिक संसाधनों से परे मध्यकाल से ही चला आ रहा था। ब्रज भ्रमण पर आने वाले लोगों के लिए यह रासलीला आध्यात्मिक और मनोरंजन का रूप धारण करती जा रही थी। 'ब्रज' जैसे जैसे आध्यात्मिक चिंतन से छिटक कर पर्यटन के केंद्र में परिवर्तित हो रहा था वैसे वैसे रासलीला का स्वरूप भी बदलने लगा। यहां आने वाले लोगों में कुछ लोग इसे भक्ति भाव के रूप में देख रहे थे तो कुछ के लिए यह मनोरंजन की नाट्य विधा बन रहा था। रासलीला मंडल भी इसके स्वरूप में जन समुदाय की मांग के अनुरूप बदलाव कर रहे थे। अर्थात् इसका व्यावसायिक रूप विकसित होने लगा।

स्वतंत्रता संग्राम के दौर में लोक नाट्यों की भूमिका का भी अपना महत्व है। महात्मा गांधी ने अपनी कृति 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में लिखा है कि वे नाटक सत्य हरिश्चंद को देखकर बहुत प्रभावित हुए थे। यह लोक नाट्य की ताकत थी। वृंदावन अपनी आध्यात्मिक और भक्ति चेतना के कारण अनेक महापुरुषों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा था। स्वामी विवेकानंद जैसे तर्कशील व्यक्ति भी इस आकर्षण से बच न सके थे। सन् 1888 में वे वृंदावन गए थे। गांधी जी ने भी दो बार मथुरा वृंदावन की यात्रा की। महामना मदन मोहन मालवीय ब्रज क्षेत्र के गौ संरक्षण से इतने प्रभावित हुए कि वर्ष 1935 में उन्होंने वहां पर हासानंद गौशाला की स्थापना की। कहने का आशय यह है कि ब्रज विचारकों, समाज सुधारकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था साथ ही पर्यटकों को भी लुभा रहा था। पर्यटकों की आवाजाही ने रासलीला के नए स्वरूप के विकास में बडा योगदान दिया है। 20 वीं शती के छठे से नौवें दशक के बीच का समय रासलीला के व्यावसायिक रूप का स्वर्णकाल कहा जाना चाहिए। यह वह समय है जहां ब्रज क्षेत्र में अनेक रासमंडली अस्तित्व में आयीं। रासलीला अनेक लोगों की आजीविका का साधन बनी। अनेक लोग रासलीला से जुड रहे थे। ब्रज की इस लोक विधा के आयोजन भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में हो रहे थे। बरसाना के पास कमई, करहला और मंडोई गांव इस नए अवतार का केंद्र बने। ये तीनों गांव भौगोलिक रूप में आसपास हैं। इन्हीं गांवों के मध्य स्वामी घमंडदेव की समाधि स्थित है। घमंडदेव मध्यकाल के प्रसिद्ध संत थे जिनका उल्लेख हम पूर्व में कर चुके हैं। करहला में संत घमंडदेव के नाम से एक मंदिर बना हुआ है। यहां कृष्ण झूल बिहारी के रूप में विराजित हैं। यहां आज भी प्राचीन रासमंडल बना हुआ है। इस मंदिर में आज भी चौबीसों घंटे हरिनाम संकीर्तन चलता रहता है। घमंडदेव का एक मंदिर फरीदाबाद जिले के लीखी गांव में भी स्थित है यहां पर भी प्रतिवर्ष रासलीला का आयोजन होता है तथा भव्य शोभा यात्रा निकाली जाती है। करहला के संदर्भ में यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होगा कि यदि स्वामी घमंडदेव यहां कुछ दिन साधनारत रहे होंगे तो उन्होंने रासलीला के आयोजन जरूर कराए होंगे। दूसरा कारण यह भी है कि यहां पर रासाचार्यों की जो परंपरा है वे किसी न किसी रूप में स्वामी घमंडदेव से प्रभावित रहे हैं। यहां के रासाचार्यों में स्वामी धीरज जी, चोथा स्वामी, स्वामी हरिद्वारी लाल, स्वामी लाडली लाल, स्वामी रमनलाल और अब स्वामी प्रवीण कुमार जी तक रासलीला मंचन के प्रचारक प्रसारक

रहे हैं। करहला और मंडोई में आज भी प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा के दिन महारास का आयोजन होता है। करहला में एक प्राचीन भवन बना हुआ है जिसे महल कहा जाता है। निकटवर्ती गांव मंडोई में उसी के समकालीन बनी हुई एक हवेली है। यहां ऐसी मान्यता है कि किसी राजा ने रासलीला की आध्यात्मिक प्रस्तुति पर चमत्कृत होकर इन भवनों का निर्माण कराया तथा सवा पांच किलो सोने का मुकुट उपहार स्वरूप प्रदान किया। यहां महल श्री कृष्ण के लिए तथा हवेली श्री राधा के लिए बनवाई गई। महारास के अवसर पर आज भी श्री कृष्ण को वही पुराना सवा पांच किलो सोने का मुकुट धारण कराया जाता है। वर्तमान में यह मुकुट सरकारी संपत्ति के रूप में बैंक के लॉकर में संरक्षित है। प्रतिवर्ष महारास के अवसर पर प्रशासन की देखरेख में इस मुकुट को रासस्थली पर ले जाया जाता है। वहां इसकी पूजा होती है और श्री कृष्ण बनने वाले स्वरूप को यह धारण कराया जाता है। आसपास के गांवों से हजारों की संख्या में ग्राम वासी इस मुकुट के दर्शन करने आते हैं। रासलीला का आनंद उठाते हैं। भव्य मेला जुडता है। करहला में स्वामी चोथा राम जी का बनवाया हुआ भवन स्वामियों की हवेली के नाम से प्रसिद्ध है। उनके परिवारीजन आज भी यहां पर निवास करते हैं। इस प्रकार रासलीला के मंचीय रूप को विकसित करने में करहला गांव की बडी भूमिका है। इन लोगों ने रासमंडली बनाकर विभिन्न तीज त्यौहार , धार्मिक आयोजन या अन्य उत्सवों के अवसर पर पूरे देश में अनेकानेक प्रस्तुतियां दी हैं। निश्चित रूप में ये प्रस्तुतियां कहीं न कहीं रासलीला के व्यावसायिक रूप से जुडी हुई हैं।

रासलीला के व्यवसायीकरण में दो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक स्वामी रामस्वरूप तथा दूसरा स्वामी हरगोविंद का। कमई गांव के स्वामी मेघस्याम का नाम भक्ति और लीलापरक रसिया लेखन में उल्लेखनीय है। उनके रसियाओं का संग्रह तीन खण्डों में प्रकाशित है। यह रसिया कृष्ण की किसी न किसी लीला से संबंधित हैं। प्राय: इनका संबंध निकुंज लीलाओं से है। इनके सुपुत्र स्वामी राम स्वरूप अपने समय के श्रेष्ठ बाल कलाकार थे। छ: वर्ष की आयु में ही ये कृष्ण का अभिनय करने लगे थे। सुंदर अभिनय और वाणी की मधुरता के कारण वृंदावन के संत इन्हें बहुत स्नेह करते थे। इनके मधुर गायन ने रासलीला को नई लोकप्रियता प्रदान की। जब ये कुछ बडे हो गए तो इन्होंने अपनी एक रास मंडली बनाई। ये वृंदावन में निवास करने लगे। इनकी रास मंडली की ख्याति ऐसी लोकप्रिय हुई कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में ये रासलीला मंचन के लिए आमंत्रित किए जाने लगे। भारत से बाहर कुछ अन्य देशों में भी इन्होंने प्रस्तुतियां दीं। लोक कला के विकास में इनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए भारत सरकार ने इन्हें वर्ष 2005 में पद्म श्री पुरस्कार से सम्मानित किया। ललित कला अकादमी द्वारा भी आपको पुरस्कृत किया गया।

स्वामी हरगोविंद भी कृष्ण के बाल चरित्र की भूमिका में अत्यंत लोकप्रिय हुए। भरतपुर जिले के जनूथर गांव निवासी हरगोविंद जी वाणी की मधुरता और स्पष्टता के लिए जाने जाते थे। छोटे कद के स्वामी हरगोविंद जी भक्त हृदय थे। 1936 में रासलीला से जुडे स्वामी हरगोविंद निरंतर नाम स्मरण और रास बिहारी भगवान में अगाध आस्था रखते थे। जीवन भर रासबिहारी की सेवा करते रहे। रास मंडली का संचालन करते रहे। आकाशवाणी केंद्र दिल्ली के ब्रजमाधुरी कार्यक्रम के लिए भेंटवार्ता के दौरान आपने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि 'रास बिहारी साक्षात् परमात्मा हैं। रास बिहारी की सेवा से स्वामी हरगोविंद और स्वामी रामस्वरूप को दुनिया जान गई। भारत सरकार ने पद्मश्री से सम्मानित किया।'' रासलीला में गोपियों की महत्ता को रेखांकित करते हुए स्वामी हरगोविंद ने नंददास का एक पद –'गोपी प्रेम की ध्वजा।' गाकर गोपियों की प्रेमाभक्ति को श्रेष्ठ बताया। इन्हें भारत सरकार द्वारा वर्ष 2006 में पद्म श्री सम्मान मिला। कई अन्य पुरस्कार भी इन्हें प्राप्त हुए। आपने बैंकोक, थाइलैंड, सिंगापुर आदि देशों में भी रासलीला मंचन किया। चैतन्य महाप्रभु के चरित्र को गौरांग लीला के रूप में प्रस्तुत कर आपने गौडिया भक्ति परंपरा को नई दिशा दी।

रासलीला में मंचीय सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, पात्रों की अधिकता, आवागमन का व्यय, वस्त्राभूषणों का व्यय आदि के कारण रासलीलाओं के आयोजन में खर्च की अधिकता होने लगी। रास मंडली के सदस्य मासिक वेतन पर रखे जाने लगे। इस प्रकार रासलीला मंडलियों में व्यावसायिकता का दवाब बढता गया। एक निश्चित न्यौछावर तयकर मंडलियां रासलीला करने लगीं। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर इन मंडलियों की मांग अधिक रहती थी। आज भी जन्माष्टमी के अवसर पर भारत में अनेक स्थानों पर रासलीलाएं देखने को मिलती हैं। यद्यपि अब कुछ चर्चित अभिनेता या अभिनेत्री कृष्ण राधा के शृंगार में वैयक्तिक प्रस्तुतियां देने लगे हैं।

आज भी वृंदावन में अनेक लोग रासलीला के व्यवसाय से जुडे हुए हैं। यह ठीक है कि अब इस क्षेत्र में आजीविका की संभावनाएं कम हुई हैं फिर भी ब्रज में इस लोक कला से लोग जुडे हुए हैं। वर्तमान में रासलीला के जो रूप अधिक दिखाई पड रहे हैं उनमें – होली रास (फूल होली तथा लट्ठमार होली) मयूर नृत्य और चरकुला नृत्य हैं। ब्रज में शरद रात्रि के अवसर

पर रासलीला के भव्य आयोजनों की परंपरा का निर्वाह अब भी हो रहा है। भाद्रपद मास में बूढी लीलाओं के आयोजनों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर गावों में रासलीलाएं होती हैं।

रासलीला : मंचीय प्रस्तुति—मंचीय रासलीला के दो हिस्से हैं—'रास' और 'लीला'। 'रास' में राधा कृष्ण के नित्य रास बिहार को प्रस्तुत किया जाता है। जैसा पूर्व में कहा गया कि वृंदावन में राधा कृष्ण को चिर नवीन युगल स्वरूप माना गया है। श्री राधा रास रासेश्वरि हैं। नित्य रास बिहार उन्हीं की आज्ञा से आरंभ होता है। इस रास मंचन को क्रमशः देखें तो कुछ इस प्रकार का स्वरूप दिखाई पडता है।

रास के लिए रास मंडल की आवश्यकता होती है। ब्रज के प्राचीन रासमंडल इस बात का प्रमाण हैं कि ये गोलाकार होते थे। इस पर एक ओर छोटा सा कुर्सीनुमा सिंहासन बना होता है। इसका आकार इतना बडा होता है कि उस पर राधा कृष्ण बने स्वरूप सहजता से बैठ सकें। उसको यथा संभव सजाया संवारा जाता है। इस रास मंडल के आस पास कोई एक ऐसा स्थान भी होता है जहां पर मंचन के लिए पात्रों को तैयार किया जाता है। इसे शृंगार घर कहा जाता है।

रास प्रस्तुति के तीन भाग कहे जा सकते हैं। स्वरूप , स्वामी और साजिंदे। मंच पर सबसे पहले साजिंदे आते हैं। आरंभ में सारंगी, मृदंग और झांझ प्रमुख साज हुआ करते थे। समय के साथ हारमोनियम , तबला, बांसुरी आदि का समावेश भी हो गया। रास के आरंभ में साजिंदे आकर कुछ भजन आदि गाते हैं। स्वामी जी आकर सबसे आगे स्थान ग्रहण करते हैं। ध्रुपद, धमार और भजन गायन आरंभ होता है। रास लीला में नृत्य, संगीत और अभिनय का संयोग है। यहां से संगीत आरंभ होता है। मध्य कालीन ब्रजभाषा काव्य में अधिकांश रचनाएं किसी न किसी राग में निबद्ध हैं। स्वामी जी उनमें से किसी रचना को उठाते और गाते हैं। साजिंदों के इस समूह को समाज कहा जाता है। प्रत्येक समाजी कोई न कोई भक्ति या आध्यात्मिक पद गाकर राधा कृष्ण की स्तुति करते हैं। इसी बीच मंच पर लगा परदा हटता है और सभी को स्वरूप दर्शन होते हैं।

स्वरूपों की संख्या 6 से 10 होती है। ये 6 से 12 वर्ष तक के बालक होते हैं। उनमें राधा, कृष्ण तथा राधा की आठ सखियां होती हैं। राधा कृष्ण मध्य में सिंहासन पर विराजित होते हैं। इसमें दाएं श्री कृष्ण तथा बाएं भाग में श्री राधा विराजित होती हैं। इनके दोनों ओर बराबर संख्या में सखियां बैठी अथवा खडी होती हैं। परदा हटते ही सबसे पहले स्वामी जी तथा उनके पश्चात् अन्य समाजीगण प्रणाम कर रास बिहारी भगवान के चरण स्पर्श करते हैं। रास बिहारी के प्रति आस्था को इस बात से समझा जा सकता है कि यदि स्वामी जी या अन्य किसी भी समाजी का पुत्र स्वरूप बना हुआ है तब भी वे उस सांसारिक संबंध को छोडकर श्री रास बिहारी भगवान के चरण स्पर्श करते हैं।

रास आरंभ होता है। सबसे पहले सखियां आरती गायन करती हैं। उनके हाथ में आरती का थाल होता है। वे आरती गाती हैं—"आरती कुंज बिहारी की कि गिरिधर कृष्ण मुरारी की।" या आरती बाल कृष्ण की कीजै, अपनौ जनम सुफल कर लीजै।" अथवा 'अधर धर मुरली बजैया की कि गिरधर कृष्ण कन्हैया की।" इसी प्रकार की एक और आरती—'जै जै राधावर ब्रजधर गिरिधर की गावौ सखी आरती युगल वर की।' आदि आरितियों का गायन सखियां करती हैं। यहां महत्वपूर्ण बात यही है कि आरती के केंद्र में चिर नवीन युगल सरकार ही रहते हैं। सखियों के हाथ में दीप सज्जित थाल होते हैं। क्रमशः सभी सखियां आरती करती हैं। आरती गायन में समाजीगण सखियों का संग देते हैं।

आरती के उपरांत सखियां राधा कृष्ण की स्तुति परक, शृंगार शोभा अथवा रासस्थली वृंदावन और ब्रज की महिमा का गुणगान करते हुए प्रिया प्रियतम से निवेदन करती हैं कि—"हे प्रिया प्रियतम जू आपके नित्य रास विहार कौ समय है गयौ है, कृपा करकें रास मंडल में पधारौ।" श्री कृष्ण सखियों की विनती स्वीकार करते हुए श्री राधा जी से रास में पधारने का निवेदन करते हैं—"हे श्री किशोरी जी आपके नित्य रास विहार में पधारवे कौ समय है गयौ है कृपा करकें नित्य रास में पधारें।" यहां वे राधा स्तुति में गाते हैं—"श्री राधे वृषभानुजा रसिकन प्राणाधार। वृंदाविपिन विहारिणी प्रणवहुं बारंबार।''

रास रासेश्वरि श्री राधे जी की अनुमति और सहभागिता से ही रास विहार संभव हो पाता है। श्री राधा गाती हैं-''प्यारे रास विलास कौ मोहि बडौ उत्साह। चलौ चलें सब सखियन लै कें नवल कुंज के मांहि।'' इसके साथ सभी स्वरूप रास मंडल के मध्य आ जाते हैं। यहां रास में नृत्य की उपस्थिति होती है। यहां भरत नाट्यम या कत्थक नृत्य की प्रस्तुति भी कई बार देखी जाती है। राधा कृष्ण कोई युगल संयोग शृंगार गीत गाते हैं। जैसे-

कृष्णः चलौ खेलिबे किशोरी बोलें गहवर में मोर

राधाः मैं न चलूंगी बिहारी वहां बसत हैं चोर।

कृष्णः कमल की कली कौ वृषभानु की लली कौ राधे

मुख चंद्र हू ते नीकौ मेरे नैना हैं चकोर। चलौ खेलिबे किशोरी बोलें गहवर में मोर।

राधा कृष्ण के युगल विहार से सखियां आनंदित होती

रहती हैं। राधा कृष्ण भिन्न भिन्न मुद्राएं बनाकर सखियों एवं दर्शकों को आनंदित करते हैं। इस प्रकार नित्य रास पूर्ण होता है। राधा कृष्ण सिंहासन पर विराजित हो जाते हैं। पर्दा गिर जाता है। कोई एक या दो सखी पर्दे के बाहर रह जाती हैं। वे दर्शकों के साथ हरिगुण गान या ब्रज महिमा, रास महिमा का मनोरंजक संवाद स्थापित करती हैं। कुछ मिनिटों के इस संवाद के मध्य पर्दे के पीछे श्रृंगारी राधा कृष्ण की कोई झांकी तैयार कर लेते हैं। झाँकियां वृंदावन के किसी मंदिर में विराजित स्वरूपों पर आधारित होती हैं। राधा वल्लभ , राधा रमण, बांके बिहारी, गोवर्धन धारी आदि। पर्दा उठता है। दर्शकों को झांकियों के निकट दर्शन का अवसर दिया जाता है। यथा योग्य लोग न्यौछावर भी चढाते हैं। इसी बीच श्रृंगार घर में लीला के निमित्त अन्य पात्र वस्त्राभूषण धारण कर लेते हैं। ये पात्र स्वरूप और समाजी दोनों में से होते हैं। इसके बाद आरंभ होती है लीला। लीला, जैसा कि पूर्व में कहा गया है, यह चरित्र आधारित मंचन है। सामान्यत: लीलाओं में कृष्ण की बाल लीलाएं, निकुंज लीलाएं और भक्त-संत चरित्रों का मंचन किया जाता है। बाल लीलाओं में -माखन चोरी, गौचारण, कृष्ण जन्मोत्सव, महादेव दर्शन, पूतना वध, तृणावर्त वध, कालीय नाग नाथन, आदि हैं। इनमें कुछ विशुद्ध बाल लीलाएं तथा कुछ कृष्ण की लोकोत्तर चमत्कार पर आधारित हैं। निकुंज लीलाओं में दान लीला, मानलीला , मोर लीला, चीर हरण, झूला लीला, स्याम सगाई , मनिहारिन लीला, वेणी गूथन, मनिहारिन, राजदान लीला आदि आती हैं।

भक्त चरित्र आधारित लीलाओं का मंचन अपेक्षाकृत नवीन विधा है। इसका श्रेय स्वामी किशन लाल जी को दिया जा सकता है। इन्होंने मीरा लीला, ध्रुव चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, सुदामा चरित्र, उद्धव लीला, नरसी भगत, नानी बाई का मायरा आदि का उल्लेखनीय मंचन किया। स्वामी किशन लाल जी के सुपुत्र मोहन लाल और वल्लभ जी संगीत साधक थे। आप दोनों ने भक्तों के चरित्रों का मनमोहक मंचन किया। भक्त चरित्रों के माध्यम से रासलीला को ब्रज से बाहर का रूप दिया। जैसे भक्त नरसी चरित्र के माध्यम से गुजरात, मीरा के माध्यम से राजस्थान, नानी बाई का मायरा के माध्यम से राजस्थान को जोडा गया। प्रह्लाद और ध्रुव चरित्र के माध्यम से बालकों को भक्ति और सत्य की शिक्षा दी जाने लगी।

गुजरात के काठियावाड़ लोगों द्वारा ब्रज परिक्रमा का इतिहास लगभग 400 वर्ष पुराना है। इनके यहां श्रीनाथ जी की पूजा का विधान है। स्वामी किशन लाल जी दो दशक से भी अधिक समय तक इन यात्राओं में रासलीला करते रहे। यहां कृष्ण को श्रीनाथ जी का मुकुट धारण कराया जाता था। इसके साथ ही स्वामी हरगोविंद जी एवं श्री राम जी ने चैतन्य महाप्रभु के जीवन चरित्र पर आधारित गौरांग लीलाओं की प्रस्तुति भी आरंभ कीं। इनमें नाम संकीर्तन की प्रधानता होती है। इनके लेखन का श्रेय गौडिया संत प्रेमानंद बाबा को जाता है। पश्चिम बंगाल में ये लीलाएं बहुत प्रभावशाली रहीं। ब्रज में बंगाली साधुओं का आगमन भी इन लीलाओं को केंद्र में लाने का कारण था।

रासलीला में संगीत का योगदान अहम है। शास्त्रीय संगीत की प्रधानता पर आधारित अष्टयाम लीलाओं का उल्लेख इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इसमें अष्टयाम सेवा पर आधारित पदों का गायन होता है। ब्रज में संगीत की प्रधानता इस लीला स्वरूप में देखी जा सकती है। यह लीला स्वरूप विशुद्ध शास्त्रीय संगीत पर आधारित है। इसे रासधारियों की संगीत शिक्षा के रूप में भी देखा जाता था। स्वामी श्रीराम जी एवं स्वामी कन्हैया लाल जी का उल्लेख इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

स्वामी राम स्वरूप जी ने हरिदासी सम्प्रदाय के पदों पर आधारित हरिदासी रासलीलाएं कीं। इनके माध्यम से हरिदास-तानसेन, हरिदास-अकबर आदि पर आधारित लीलाएं होने लगीं। स्वामी हरिदास, संत हित हरिवंश, सूरदास जैसे महापुरुषों के जीवन पर आधारित रासलीलाओं का मंचन भी होने लगा। इस प्रकार विविध प्रयोगों से रासलीलाओं में नवीनता आई।

प्राय: रासलीला का समय रात्रिकाल में 7 से 10 या 8 से 11 तक का होता है। लीला के समापन पर मुकुट बिहारी की आरती की जाती है। आरती के उपरांत शयन के पद गाए जाते हैं। ये पद बिना वाद्ययंत्रों के गाए जाते हैं। इनका भाव यही होता है कि अब युगल सरकार के शयन का समय हो गया है। उन्हें सोने दिया जाए। 'अब पौढन कौ समय भयौ।' जैसे पद गाए जाते हैं। अथवा 'धन धन राधिका के चरण।' जैसे पदों से रास बिहारी को शयन कराया जाता है।

रासलीला और रसिया- 'रसिया' ब्रज लोक गीत विधा है। राग रंग से दूर रसिकता को केंद्र में रखकर रसिया की रचना होती है। होली उत्सव के अवसर पर इनका विशेष गायन होता है। आरंभ में रासलीला में रसिया गायन का उल्लेख नहीं मिलता। संत और भक्तों के मध्य रास होता था तो स्वाभाविक है कि उसमें भजन गाए जाने लगे होंगे। ये भजन लीला विशेष पर आधृत हो सकते हैं और आध्यात्मिक चिंतन परक भी। कालांतर में हाथरस के पंडित नथाराम शर्मा के कृष्ण चरित्र आधारित रसिया रासलीला में गाए जाने लगे। स्वामी मेघ स्याम जी ने अनेक रसिया लिखे। निकुंज लीला, बाल लीला, आध्यात्मपरक रसिया। रासलीलाओं

में सर्वाधिक इन्हीं के रसिया गाए जाते रहे। चंद्र सखी के रसिया भी रासलीलाओं में गाए जाते हैं। गोवर्धन निवासी घासीराम छीतरमल इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध लोकगीत लेखक और गायक हुए। इन सभी के रसियाओं में राधा कृष्ण की निकुंज लीलाओं का वर्णन अधिक किया गया। इस प्रकार रसिया रास में स्थान बनाने लगे। 'रास' और 'लीला' के संधि स्थल पर इनकी उपयोगिता सटीक बैठती थी। रसिया गायन की दूसरी उपयोगिता मनोरंजन के रूप में संगत रही। इसमें वाद्ययंत्र तेज ध्वनि के साथ बजते हैं इसलिए ये लोक नृत्य के अनुरूप होते हैं। लोक नृत्य जन सामान्य को अपने अधिक पास दिखाई पडता है। इस प्रकार रास में रसिया का समावेश हो गया और लोकप्रिय भी।

रासलीला का भविष्य- भारत में लोक विधाओं का ह्रास बडी तेजी से हुआ है। लोकनाट्य भी इनमें से एक है। रासलीला भी इसका अपवाद नहीं हैं। रासलीलाओं का मंचन व्यय साध्य होता चला गया। इधर भक्ति और आध्यात्म की गति बहुत मंद हो गई। यह गति जन सामान्य में से भी गई और रासधारियों में भी व्यावसायिकता के कारण उसका ह्रास हुआ। फिर, आधुनिक युग के नए मनोरंजन साधनों के सामने रासलीला ठहर नहीं पाई। बहुत दिन तक रासलीलाएं आजीविका का साधन बनी रहीं तब नए बालक इस ओर आ जाते थे। बहुत बार आर्थिक अभाव में भी माता पिता बच्चों को रास मंडलियों में भेज देते थे। शिक्षा का अभाव भी उसका एक कारण था। इधर शिक्षा के प्रचार प्रसार के उपरांत नए स्वरूप मिलना बंद हो गए। एक संकट यह था कि स्वरूप बनने की आयु तक तो इस क्षेत्र में रोजगार की संभावना बनी रहती थी पर बडे होने पर यहां रोजगार की सीमाएं बंध जाती हैं। इसलिए आजीविका के क्षेत्र का संकुचित होना भी इसके ह्रास का बडा कारण बना। रासलीला में नवीनता के अभाव ने भी इस विधा को संकुचित किया है अन्यथा जिस प्रकार रामलीला आज भी लोकप्रिय है वैसे ही रासलीला को भी बचाया जा सकता था। यह ठीक है कि अभी भी रासलीला मंडलियां कार्यरत हैं। पर अब इनमें वह धार नहीं है। लोकप्रियता का ग्राफ बहुत नीचे आ गया है।

रासलीला मंडलियों के बंद होने के उपरांत इनसे जुडे अधिकांश लोग मंदिर देवालयों में सेवक के रूप में जुड गए। कुछ ने उपरोहित्य कर्म को अपनी आजीविका का क्षेत्र बनाया। कुछ लोग श्रीमद्भागवत या भजन गायन को आजीविका का क्षेत्र चुन बैठे। यद्यपि बदले हुए सामाजिक परिदृश्य में इनमें से कोई भी मार्ग स्थाई आर्थिक सुरक्षा का भाव पैदा नहीं कर पा रहा है। वर्तमान में रासलीला के कुछ मंडल या संगीत प्रशिक्षण केंद्र मयूर नृत्य, फूल होली उत्सव, चरकुला नृत्य या परंपरागत रासलीला की प्रस्तुति दे रहे हैं। भारत सरकार तथा अन्य प्रदेश सरकारों के संस्कृति मंत्रालय द्वारा संस्कृति संरक्षण के अभियान में ये लोग इस विधा को संरक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं। पर, इसका स्वरूप और प्रस्तुतिकरण रास लीला के मूल रूप से एकदम भिन्न है। रासलीला का यह रूप कितनी दूर तक जाएगा यह कहा नहीं जा सकता।

तथ्य प्रस्तुति

1. रासलीला दर्शन
2. स्वामी हरगोविंद, वृंदावन, से भेंटवार्ता
3. रासाचार्य श्री भगवानदास उपाध्याय, प्रेम सरोवर ,बरसाना से बातचीत
4. हवेली संगीत के प्रसिद्ध गायक तथा लगभग 40 वर्ष तक रासलीला में सक्रिय रहे श्री राधा रमण शर्मा जी से बातचीत
5. रासाचार्य प्रवीण जी, करहला से भेंटवार्ता
6. रासाचार्य श्री हरिप्रसाद जी, बरसाना से भेंटवार्ता
7. श्री राधा विहारी गोस्वामी, पूर्व उद्घोषक, आकाशवाणी केंद्र मथुरा वृंदावन

संदर्भ

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद वर्ष 1, पृ.65
2. पुराणाचार्य पं. श्रीनाथ जी शास्त्री, मानस शास्त्री, रास पंचाध्यायी, पृ.12, मौजीराम स्मृति न्यास दिल्ली
3. वर्धा हिंदी शब्दकोश, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
4. हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, संपादक धीरेन्द्र वर्मा , पृ.527
5. मानस शास्त्री, रास पंचाध्यायी, पृ.7 मौजीराम स्मृति न्यास दिल्ली
6. मानस शास्त्री, रास पंचाध्यायी, पृ.8 मौजीराम स्मृति न्यास दिल्ली
7. मानस शास्त्री, रास पंचाध्यायी, पृ.8 मौजीराम स्मृति न्यास दिल्ली
8. हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य में वन एवं वनस्पति संपदा , डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा अप्रकाशित शोधग्रंथ, डॉ.भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा 2006
9. नंददास ग्रंथावली, संपादक-ब्रजरत्न दास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
10. हिंदी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप विकास- तपेश्वर नाथ प्रसाद, पृ. 217
11. ब्रज के धर्म संप्रदाय- प्रभुदयाल मीतल, पृ. 346
12. हिंदी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप विकास- तपेश्वर नाथ प्रसाद, पृ. 220
13. शरदोत्सव स्मारिका, सं. प्रो.राम नारायण गोयल, ब्रज संस्कृति एवं विकास संस्थान, दिल्ली, पृ.12